चतुःश्लोकी श्रीमद्भगवद्गीता

धृतराष्ट्र उवाच—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥१.१॥

धृतराष्ट्रने कहा—हे सञ्जय! धर्मभूमिस्वरूप कुरुक्षेत्रमें मेरे पुत्रों तथा पाण्डुपुत्रोंने युद्धकी इच्छासे एकत्रित होनेके पश्चात् क्या किया?॥ १.१॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥१०.८॥

मैं सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ, मुझसे ही सभी कार्यमें प्रवृत्त होते हैं—इस प्रकार समझकर पण्डितगण भावयुक्त होकर मुझे भजते हैं॥१०.८॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥१०.९॥

जो अपने चित्त तथा प्राण मुझे समर्पित कर दिए हैं, वे सर्वदा एक-दूसरेको मेरा तत्त्व बताते हुए एवं मेरे नाम, रूपादिका कीर्तन करते हुए सन्तोष लाभ करते हैं और आनन्दका अनुभव करते हैं॥१०.९॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥१०.१०॥

मेरे नित्य-संयोगकी अभिलाषासे प्रीतिपूर्वक भजनशील उन लोगोंको मैं वह बुद्धियोग प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा वे मुझे प्राप्त होते हैं॥१०.१०॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥१०.११॥

उन लोगोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिए ही उनकी बुद्धिवृत्तिमें स्थित होकर मैं प्रदीप्त ज्ञानरूप दीपकके आलोकसे अज्ञानसे उत्पन्न संसाररूप अन्धकारको नष्ट कर देता हूँ॥१०.११॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥१८.६५॥

तुम मुझे चित्त समर्पण करो, मेरे नाम-रूप लीला आदिके श्रवण-कीर्तन आदि परायण होकर मेरे भक्त होओ, मेरी पूजा करनेवाला होओ और मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार तुम मुझे ही प्राप्त करोगे। मैं तुम्हें यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो॥ १८.६५॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥१८.६६॥

वर्ण, आश्रम आदि समस्त शारीरिक और मानसिक धर्मोंका परित्यागकर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो। मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त कर दूंगा, तुम शोक मत करो॥१८.६६॥

यत्र योगश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥१८.७८॥

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं श्री (राज्यलक्ष्मी), विजय, ऐश्वर्यवृद्धि और न्यायपरायणता विद्यमान है—यही मेरा निश्चित मत है॥१८.७८॥

गीता-माहात्म्य

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ (श्लोक ५)

भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र कमल मुख से निकलने वाले महाभारत के दिव्य सार, गीतारूपी गंगा जल को पीने से, व्यक्ति को भौतिक दुनिया में फिर कभी पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, भक्तिपूर्वक गीता का पाठ करने से जन्म और मृत्यु का चक्र समाप्त हो जाता है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥ (श्लोक ६)

सभी उपनिषदों का साररूप यह गीतोपनिषद् (श्रीमद्भगवद्गीता) एक गाय की तरह है, और श्रीनन्द महाराज के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण, जो एक ग्वालबाल के रूप में प्रसिद्ध हैं, इस गाय का दूध दुह रहे हैं। अर्जुन बिलकुल एक बछड़े की तरह है, और विद्वत्वरेण्य बुद्धिमान पुरुष और शुद्ध भक्त इस भगवद्गीतारूप अमृतमय दुग्ध का पान करते हैं।

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥ (श्लोक ७)

समस्त विश्व के लोगों के लिए एक ही धर्मग्रंथ है, और वह है श्रीमद्भगवद्गीता। समस्त विश्व के लिए एक ही ईश्वर है, वह है भगवान् श्रीकृष्ण। तथा उनके पवित्र सोलह नाम अर्थात् ***"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।"*** यह बत्तीस अक्षरोंवाला महामंत्र ही जप करने योग्य एकमेव मंत्र हैं। और सभी लोगों के लिए केवल एक ही निर्धारित काम है, वह है भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करना।

चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवत

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥१.१.१॥

जिन परमेश्वरसे इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति (पालन) तथा विनाश कार्य अन्वय (कारणकी कार्यमें स्थिति, जैसे—मिट्टीकी घटमें स्थिति) और उसके विपरीत व्यतिरेक (कारणका कार्यसे पृथक् भाव अर्थात् मिट्टीकी घटसे पृथक स्थिति) रूपमें साधित होते हैं, जो जगत्‌के कर्त्ताके धर्मसे सम्पूर्ण रूपमें अवगत हैं, जिनमें स्वतःसिद्ध ज्ञान स्वयं विराजमान है, जिन्होंने आदि कवि ब्रह्माके हृदयमें सङ्कल्पके द्वारा तत्त्व-वस्तुको प्रकाशित किया है, जिन परमेश्वरके सम्बन्धमें ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी मोहमें पड़ जाते हैं; तथा जिस प्रकार तेज, जल और मिट्टीमें परस्पर एकके बदले दूसरी वस्तुका सत्यकी भाँति भ्रम होता है (अर्थात् जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका सत्यकी भाँति भ्रम होता है), उसी प्रकार जिन परमेश्वरमें सत्त्व, रजः और तमः गुणोंका अवस्थान सत्यकी भाँति प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः जिनमें जड़धर्म सम्भव ही नहीं है, जो माया और मायाके कार्य-कपटतासे सर्वदा मुक्त हैं, समस्त जीवोंके हृदयमें विराजित तथा सर्वदेशकालवर्ती उन्हीं सत्यस्वरूप-लक्षणमय परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं।

श्रीभगवानुवाच—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥२.९.३०॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे ब्रह्मन्! भगवान्‌के स्वरूपकी उपलब्धि और रहस्यमयी प्रेमाभक्तिके साथ अत्यन्त गोपनीय शब्द शास्त्रोंका प्रतिपाद्य मेरा ज्ञान तथा उस प्रेमाभक्तिके अङ्ग—साधनभक्तिको मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, तुम इसे ग्रहण करो।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥२.९.३१॥

स्वरूपतः मेरा जो परिमाण (आकार) है, सत्तावान होना जो लक्षण है तथा मेरे (श्याम, चतुर्भुज आदि) जो-जो रूप (भक्तवात्सल्यादि) गुण और कर्म (लीलाएँ) हैं, तुम उन सब विषयोंका ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव मेरी कृपासे सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त करो।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥२.९.३२॥

सृष्टिके पूर्व एकमात्र मैं ही था। स्थूल और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके कारणभूत प्रधान अथवा प्रकृतिादि मुझसे पृथक् रूपमें अन्य कुछ भी नहीं था। सृष्टिके पश्चात् भी एकमात्र मैं ही रहता हूँ, क्योंकि यह विश्व भी मैं ही हूँ तथा प्रलयमें भी एकमात्र मैं ही अवशिष्ट (बचा) रहता हूँ।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥२.९.३३॥

वास्तव प्रयोजन तत्त्वके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है अथवा सत्तायुक्त होनेपर भी मेरे अधिष्ठानमें जिसकी प्रतीति नहीं है, उसे ही मेरी माया समझो। उदाहरण स्वरूप—जिस प्रकार दो चन्द्रमाओंका अधिष्ठान न रहनेपर भी काँचादिमें दो चन्द्रमाओंकी प्रतिछवि दिखायी देती है, अथवा जिस प्रकार राहु ग्रह-मण्डलमें रहनेपर भी दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार। भावार्थ यह है कि ज्योतिर्मय वस्तुके दर्शनके समय आभास और अन्धकारका दर्शन कुछ भी नहीं होता और आभास तथा अन्धकारके दर्शनकालमें ज्योतिर्मय वस्तुका दर्शन भी नहीं होता, तथा आभास और अन्धकारकी कर्तृत्व-सत्तामें ज्योतिर्मय वस्तुके अतिरिक्त उन दोनोंकी स्वतन्त्रता नहीं है। उसी प्रकार भगवान् और उनकी माया हैं। श्रीभगवान् ज्योतिर्मय वस्तु हैं—उनकी माया दो प्रकारकी है—आभास-स्थानीय जीव-माया और तम-स्थानीय गुण-माया। इन दोनोंके ही श्रीभगवान्‌के आश्रित होनेपर भी भगवदन्तरङ्ग-प्रतीतिमें जीव और मायाकी प्रतीतिका अभाव है और जीव और मायिक प्रतीतिमें भी भगवत्-प्रतीति नहीं होती है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥२.९.३४॥

जिस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि आदि महाभूत देव—तिर्यक् आदि उच्च-नीच प्राणियोंमें प्रविष्ट होकर भी अप्रविष्ट रूपसे स्वतन्त्र होकर वर्तमान हैं, उसी प्रकार मैं भी भूतमय जगत्‌में सभी प्राणियोंमें (सत्त्वाश्रयरूप परमात्मभावसे) प्रविष्ट होकर भी पृथक् भगवत्-स्वरूपमें सभीके भीतरमें और बाहरमें स्फुरित होता हूँ।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः।
अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥२.९.३५॥

आत्म-तत्त्वके जिज्ञासु व्यक्ति मेरे स्वरूप-तत्त्वका अनुवृत्ति और व्यावृत्ति (निष्कासन) क्रमसे अथवा विधि और निषेध द्वारा विचार करके जो वस्तु सर्वत्र और सर्वदा नित्य है, उस विषयमें ही परिप्रश्न करेंगे।

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा॥१२.१३.१६॥

हे द्विजणजणो! जिस प्रकार सर्वपाप-विनाशत्वके कारण गङ्गा सभी पुण्य नदियोंसे श्रेष्ठ हे, सर्वोत्कृष्टत्वके कारण विष्णु सभी देवताओंसे श्रेष्ठ हैं, भागवत धर्मके उपदेष्टाके कारण शिव सभी वैष्णवोंसे श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत पुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है।

नामसङ्कीर्त्तनं यस्य सर्वपाप-प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥१२.१३.२३॥

जिनका नाम सङ्कीर्त्तन समस्त पापोंका विनाश करनेवाला है और जिनके प्रति किया गया नमस्कार समस्त दुःखोंको हर लेनेवाला है, मैं उन परम पुरुष श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ।